चौबीस ठाणा चर्चा

प्रस्तुति
आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के शिष्य
मुनि श्री प्रशान्तसागरजी महाराज

प्रकाशक
धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
खुरई रोड-सागर (म. प्र.)

चौबीस ठाणा चर्चा

प्रस्तुति
आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के शिष्य
मुनि श्री प्रशान्तसागरजी महाराज

प्रकाशक
धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
खुरई रोड-सागर (म. प्र.)

•

कृति
चौबीस ठाणा चर्चा

•

प्रस्तुति
मुनि श्री प्रशान्तसागरजी महाराज

•

संस्करण
पंचम, अगस्त 2011

•

आवृत्ति
1100

•

सहयोग राशि
20/-

•

गुरु चरणों में समर्पित
श्री माँ जिनवाणी दिगम्बर जैन पाठशाला परिवार, बबीना कैन्ट

•

प्राप्ति स्थान :
धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
बाहुबली कालोनी
सागर (म. प्र.)
094249-51771

•

मुद्रक
विकास ऑफसेट, भोपाल

प्रकाशकीय

परमपूज्य संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य मुनि श्री प्रशान्तसागरजी महाराज ने चौबीस ठाणा चर्चा को विशेषताओं सहित प्रस्तुत किया है।

परम पूज्य मुनि श्री से मैंने कहा कि इतने अधिक जगह से चौबीस ठाणा प्रकाशित हुए हैं फिर आपने यह एक और क्यों तैयार कर दिया। तब मुनि श्री ने कहा-प्रायः जितने भी चौबीस ठाणा प्रकाशित हुए हैं, उनमें कुछ अशुद्धियाँ परम्परागत चली आ रही हैं। जैसे-सत्यमनोयोग, सत्यवचनयोग, अनुभय मनोयोग, अनुभय वचनयोग में, कार्मणकाययोग में एवं अनाहारक मार्गणा में तृतीय शुक्लध्यान लेते हैं। जबकि आगम में ऐसा वर्णित नहीं है तथा अनन्तानुबंधी चतुष्क कषाय में कषाय स्वकीय लेते हैं। वह भी आगमकथित नहीं है। इनका सम्यक् व्याख्यान क्या होगा, यह इस चौबीस ठाणा में लिखा गया है और जहाँ-जहाँ आवश्यकता थी, वहाँ-वहाँ फुटनोट पर विशेषताओं के माध्यम से खुलासा किया गया है। जिससे विषय पूरा स्पष्ट हो गया है।

मुनि श्री के सराहनीय प्रयास को कोटिशः नमन एवं पुस्तक के प्रकाशन कराने के लिए श्री माँ जिनवाणी दिगम्बर जैन पाठशाला परिवार, बबीना केन्ट को हार्दिक आभार।

प्रकाशक

चौबीस ठाणा चर्चा

(गोम्मटसार जीवकाण्ड पर आधारित)

गइ इंदिये च काये, जोगे वेये कसाय णाणे य।
संजम दंसण लेस्सा, भविया सम्मत सण्णि आहारे॥
गुण जीवा पज्जती, पाणा सण्णा य मग्गणा ओय।
उवओगो विय कमसो, वीसं तु परुवणा भणिया॥
झाणावि य पच्चावि य,जाइ य कुलकोडि संजुया सव्वे।
गहणाति जेण भणिया,कमेण चउवीस ठाणाणि॥

चौबीस स्थानों के नाम

1.	गति	13.	संज्ञी
2.	इन्द्रिय	14.	आहारक
3.	काय	15.	गुणस्थान
4.	योग	16.	जीवसमास
5.	वेद	17.	पर्याप्ति
6.	कषाय	18.	प्राण
7.	ज्ञान	19.	संज्ञा
8.	संयम	20.	उपयोग
9.	दर्शन	21.	ध्यान
10.	लेश्या	22.	आस्त्रव
11.	भव्य	23.	जाति
12.	सम्यक्त्व	24.	कुल

चौबीस ठाणा के उत्तर भेद गुणस्थानों में

मार्गणा	गुणस्थान
गति -4	
1. नरकगति	1 से 4
2. तिर्यञ्चगति	1 से 5
3. मनुष्यगति	1 से 14
4. देवगति	1 से 4
इन्द्रिय-5	
1. एकेन्द्रिय	1
2. दो इन्द्रिय	1
3. तीन इन्द्रिय	1
4. चतुरिन्द्रिय	1
5. पञ्चेन्द्रिय	1 से 14
काय -6	
1. पृथ्वीकायिक	1
2. जलकायिक	1
3. अग्निकायिक	1
4. वायुकायिक	1
5. वनस्पतिकायिक	1
6. त्रसकायिक	1 से 14
योग -15	
1. सत्य मनोयोग	1 से 13
2. असत्य मनोयोग	1 से 12
3. उभय मनोयोग	1 से 12
4. अनुभय मनोयोग	1 से 13
5. सत्य वचनयोग	1 से 13
6. असत्य वचनयोग	1 से 12
7. उभय वचनयोग	1 से 12
8. अनुभय वचनयोग	1 से 13
9. कार्माण काययोग	1, 2, 4, 13
10. औदा. मिश्र.योग	1, 2, 4, 13
11. औदा.काय योग	1 से 13
12. वैक्रि.मिश्र योग	1,2,4
13. वैक्रि.काय योग	1से 4
14. आहा. मिश्र योग	6 वाँ
15. आहा.काय योग	6 वाँ
वेद -3	
1. स्त्रीवेद	1 से 9
2. पुरुषवेद	1 से 9
3. नपुंसक वेद	1 से 9
कषाय-25	
अनंतानुबन्धी-4	
1. क्रोध	1 से 2
2. मान	1 से 2
3. माया	1 से 2
4. लोभ	1 से 2
अप्रत्याख्यानावरण-4	
5. क्रोध	1 से 4
6. मान	1 से 4
7. माया	1 से 4
8. लोभ	1 से 4

10. मान	1 से 5
11. माया	1 से 5
12. लोभ	1 से 5

संज्वलन -4

13. क्रोध	1 से 9
14. मान	1 से 9
15. माया	1 से 9
16. लोभ	1 से 10

अकषाय-9

17. हास्य	1 से 8
18. रति	1 से 8
19. अरति	1 से 8
20. शोक	1से 8
21. भय	1 से 8
22. जुगुप्सा	1 से 8
23. स्त्रीवेद	1 से 9
24. पुरुषवेद	1 से 9
25. नपुंसकवेद	1 से 9

ज्ञान - 8

1. कुमतिज्ञान	1 से 2
2. कुश्रुतज्ञान	1 से 2
3. कुअवधिज्ञान	1 से 2
4. मतिज्ञान	4 से 12
5. श्रुतज्ञान	4 से 12
6. अवधिज्ञान	4 से 12

एवं सिद्धों में भी

संयम - 7

1. असंयम	1 से 4
2. संयमासंयम	5 वाँ
3. सामायिक	6 से 9
4. छेदोपस्थापना	6 से 9
5. परिहार विशुद्धि	6 से 7
6. सूक्ष्मसाम्पराय	10 वाँ
7. यथाख्यात	11से 14

दर्शन - 4

1. चक्षुदर्शन	1 से 12
2. अचक्षुदर्शन	1 से 12
3. अवधिदर्शन	4 से 12
4. केवलदर्शन	13 से 14

एवं सिद्धों में भी

लेश्या -6

1. कृष्ण लेश्या	1 से 4
2. नील लेश्या	1 से 4
3. कापोत लेश्या	1 से 4
4. पीत लेश्या	1 से 7
5. पद्म लेश्या	1 से 7
6. शुक्ल लेश्या	1 से 13

भव्य -2

1. भव्य	1 से 14
2. अभव्य	1

2. सासादन	2
3. सम्यग्मिथ्यात्व	3
4. उपशम	
प्रथमोपशम	4 से 7
द्वितीयोपशम	4 से 11
5. क्षयोपशम	4 से 7
6. क्षायिक	4 से 14

संज्ञी -2

1. संज्ञी	1 से 12
2. असंज्ञी	1

आहारक -2

1. आहारक	1 से 13
2. अनाहारक	1,2,4,13,14

गुणस्थान -14

1. मिथ्यात्व
2. सासादन
3. मिश्र
4. अविरत सम्यक्त्व
5. देशव्रत
6. प्रमत्तविरत
7. अप्रमत्तविरत
8. अपूर्वकरण
9. अनिवृत्तिकरण
10. सूक्ष्मसाम्पराय
11. उपशांतमोह
14. अयोगकवली

स्वकीय

जीवसमास-19

1. पृथ्वीकायिकसूक्ष्म	1
2. पृथ्वीकायिकबादर	1
3. जलकायिकसूक्ष्म	1
4. जलकायिकबादर	1
5. अग्निकायिकसूक्ष्म	1
6. अग्निकायिकबादर	1
7. वायुकायिक सूक्ष्म	1
8. वायुकायिकबादर	1
9. नित्य निगोद सूक्ष्म	1
10. नित्य निगोद बादर	1
11. इतर निगोद सूक्ष्म	1
12. इतर निगोद बादर	1
13. सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति	1
14. अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति	1
15. दो इन्द्रिय जीव बादर	1
16. तीन इन्द्रिय जीव बादर	1
17. चार इन्द्रिय जीव बादर	1
18. असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव बादर	1
19. संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव बादर	1 से 14

पर्याप्ति -6

1. आहार	1 से 14

3. इन्द्रिय 1 से 14
4. श्वासोच्छ्वास 1 से 14
5. भाषा 1 से 14
6. मन 1 से 14

प्राण -10

1 से 5 इन्द्रिय 1 से 12
भावेन्द्रिय की अपेक्षा
6 मनोबल 1 से 12
भावमन की अपेक्षा
7 वचनबल 1 से 13
8 कायबल 1 से 13
9 श्वासोच्छ्वास 1 से 13
10 आयु 1 से 14

संज्ञा - 4

1. आहार 1 से 6
2. भय 1 से 8
3. मैथुन 1 से 9
4. परिग्रह 1 से 10

उपयोग -12

ज्ञानोपयोग -8

1. मतिज्ञान 4 से 12
2. श्रुतज्ञान 4 से 12
3. अवधिज्ञान 4 से 12
4. मनःपर्ययज्ञान 6 से 12
5. केवलज्ञान 13,14
6. कुमतिज्ञान 1 से 2
8. कुअवधिज्ञान 1 से 2

दर्शनोपयोग -4

9. चक्षु 1 से 12
10. अचक्षु 1 से 12
11. अवधि 4 से 12
12. केवल 13,14

ध्यान -16

आर्त ध्यान -4

1. इष्टवियोगज 1 से 6
2. अनिष्टसंयोगज 1 से 6
3. पीड़ाचिन्तन 1 से 6
4. निदानबंध 1 से 5

रौद्र ध्यान-4

5. हिंसानन्द 1 से 5
6. मृषानन्द 1 से 5
7. चौर्यानन्द 1 से 5
8. परिग्रहानन्द 1 से 5

धर्म्यध्यान-4

9. आज्ञाविचय 4 से 7
10. अपायविचय 4 से 7
11. विपाकविचय 5 से 7
12. संस्थानविचय 6 से 7

शुक्लध्यान-4

13. पृथक्त्ववितर्कवीचार 8 से 11
14. एकत्ववितर्क अवीचार 12
15. सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति 13

आस्त्रव -57

मिथ्यात्व-5

1. एकान्त 1
2. विनय 1
3. विपरीत 1
4. संशय 1
5. अज्ञान 1

6-20. योग 15 (पूर्वोक्त) 1 से 13

अविरति-12

21-25. 5 स्थावर की रक्षा न करना 1 से 5
26. त्रस जीव की रक्षा न करना 1 से 4
27-31. 5 इन्द्रिय वश में न करना 1 से 5
32. 1 मन को वश न करना 1 से 5
33-57. कषाय 25(पूर्वोक्त) 1 से 10

जाति -84 लाख

1. 7 लाख पृथ्वीकायिक 1
2. 7 लाख जलकायिक 1
3. 7 लाख अग्निकायिक 1
4. 7 लाख वायुकायिक 1
5. 7 लाख नित्य निगोद 1
6. 7 लाख इतर निगाद 1
7. 10 लाख वनस्पतिकायिक 1
9. 2 लाख तीन इन्द्रिय 1
10. 2 लाख चार इन्द्रिय 1
11. 4 लाख पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च 1 से 5
12. 4 लाख नरक 1 से 4
13. 4 लाख देव 1 से 4
14. 14 लाख मनुष्य 1 से 14

कुल 199.5 लाख कोटि

1. 22 लाख कोटि पृथ्वीकायिक 1
2. 7 लाख कोटि जलकायिक 1
3. 3 लाख कोटि अग्निकायिक 1
4. 7 लाख कोटि वायुकायिक 1
5. 28 लाख कोटि वनस्पतिकायिक 1
6. 7 लाख कोटि दो इन्द्रिय 1
7. 8 लाख कोटि तीन इन्द्रिय 1
8. 9 लाख कोटि चार इन्द्रिय 1
9. 12.5 लाख कोटि जलचर 1 से 5
10. 19 लाख कोटि थलचर 1 से 5
11. 12 लाख कोटि नभचर 1 से 5
12. 25 लाख कोटि नारक 1 से 4
13. 26 लाख कोटि देव 1 से 4
14. 14 लाख कोटि मनुष्य 1 से 14

गति-जिस कर्म के उदय से जीव नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देवपने को प्राप्त होता है, उसे गति कहते हैं। गति की अपेक्षा जीवों का परिचय करना गति मार्गणा है। जिनमें अथवा जिनके द्वारा जीवों की खोज की जाती है, उसे मार्गणा कहते हैं। गति मार्गणा के चार भेद हैं -नरकगति, तिर्यञ्चगति, मनुष्यगति और देवगति।

1.नरकगति - जिस कर्म का निमित्त पाकर आत्मा नारक भाव को प्राप्त होता है, उसे नरकगति कहते हैं।

2.तिर्यञ्चगति -जिस कर्म का निमित्त पाकर आत्मा तिर्यञ्च भाव को प्राप्त होता है, उसे तिर्यञ्चगति कहते हैं।

3.मनुष्यगति -जिस कर्म का निमित्त पाकर आत्मा मनुष्य भाव को प्राप्त होता है, उसे मनुष्य गति कहते हैं।

4.देवगति - जिस कर्म का निमित्त पाकर आत्मा देव भाव को प्राप्त होता है , उसे देवगति कहते हैं।

इन्द्रिय मार्गणा- एकेन्द्रियादि जाति नामकर्म के उदय से जीव की जो एकेन्द्रिय आदि अवस्था होती है, उसे इन्द्रिय कहते हैं। इन्द्रिय की अपेक्षा जीवों का परिचय करना इन्द्रिय मार्गणा है। इन्द्रिय मार्गणा के पाँच भेद हैं। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय।

काय मार्गणा -आत्मा की प्रवृत्ति द्वारा संचित किए गए पुद्गल पिंड को काय कहते हैं। काय की अपेक्षा जीवों का परिचय करना काय मार्गणा है। काय मार्गणा के छः भेद हैं। पृथ्वीकायिक,जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक एवं त्रसकायिक।

योग मार्गणा-काय, वचन व मन के निमित्त से होने वाले आत्मप्रदेशों के हलन-चलन को योग कहते हैं। योग की अपेक्षा जीवों का परिचय करना योग मार्गणा है।

सत्य वचनयोग, सत्य मनोयोग आदि-पदार्थ को कहने या विचारने के लिए जीव की सत्य, असत्य, उभय और अनुभय रूप चार प्रकार के वचन और आदि कहते हैं।

सत्य के विषय में होने वाली मन की प्रवृत्ति को सत्य कहते हैं। जैसे- 'यह जल है'। असत्य के विषय में होने वाली मन की प्रवृत्ति को असत्य कहते हैं। जैसे-मृगमरीचिका को जल कहना।

दोनों के विषयभूत पदार्थ को उभय कहते हैं। जैसे-कमण्डलु को घट कहना, क्योंकि कमण्डलु घट का कार्य करता है, इसलिए कथंचित् सत्य है और घटाकार नहीं है, इसलिए कथंचित् असत्य है।

जो दोनों ही सत्य और असत्य का विषय नहीं होता है ऐसे पदार्थ को अनुभय कहते हैं। जैसे-सामान्य रूप से यह प्रतिभास होना कि ''यह कुछ है'' यहाँ सत्य-असत्य का कुछ भी निर्णय नहीं हो सकता इसलिए अनुभय है। जैसे-गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज से श्रावक कहें हमारे नगर में आईये ? उत्तर मिलेगा 'देखो'। यह अनुभय वचन योग है। न सत्य है और न असत्य है।

1. कार्मण काययोग - जब यह जीव मरण कर नया शरीर धारण करने के लिए विग्रह गति में जाता है तब कार्मण शरीर के निमित्त से आत्म प्रदेशों का जो परिस्पंदन होता है, उसे कार्मण काययोग कहते हैं ।

विग्रहगति के अलावा केवली भगवान् के प्रतर और लोकपूरण समुद्घात में भी कार्मण काय योग होता है ।

2. औदारिकमिश्र काययोग - औदारिक शरीर की उत्पत्ति प्रारम्भ होने के प्रथम समय से लेकर जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं कर लेता तब तक औदारिकमिश्र काययोग होता है। यहाँ वह जीव कार्माण वर्गणाओं से मिश्रित औदारिक वर्गणाओं को ग्रहण करता है।

3. औदारिक काययोग- मनुष्य और तिर्यञ्चों के शरीर को औदारिक काय कहते हैं और उसके निमित्त से जो योग होता है, उसे औदारिक काययोग कहते हैं ।

4. वैक्रियिकमिश्र काययोग- वैक्रियिक शरीर की उत्पत्ति प्रारम्भ होने के प्रथम समय से लगाकर जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं कर लेता तब तक वैक्रियिक मिश्र काययोग रहता है। इस काल में वह जीव कार्मण वर्गणाओं

5. वैक्रियिक काययोग -देव और नारकियों के शरीर को वैक्रियिककाय कहते हैं और उसके निमित्त से जो योग होता है, उसे वैक्रियिककाययोग कहते हैं।

6. आहारकमिश्र काययोग -आहारक शरीर की उत्पत्ति होने के प्रथम समय से लगाकर जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो तब तक आहारकमिश्र काय कहलाता है एवं उसके निमित्त से जो योग होता है, उसे आहारकमिश्र काययोग कहते हैं। इस काल में वह जीव औदारिक वर्गणाओं से मिश्रित आहारक वर्गणाओं को ग्रहण करता है।

7. आहारक काययोग-छठवें गुणस्थानवर्ती मुनि के सूक्ष्म तत्त्व के विषय में जिज्ञासा होने पर उनके मस्तक से एक हाथ ऊँचा सफेद रंग का पुतला निकलता है। वह जहाँ कहीं भी केवली हों, वहाँ अपनी जिज्ञासा का समाधान करके वापस आ जाता है, इसे आहारक काय कहते हैं एवं इसके निमित्त से होने वाला योग आहारक काययोग कहलाता है।

वेद मार्गणा

''वेद्यत इति वेदः'' जो वेदा जाए, अनुभव किया जाए उसे वेद कहते हैं। वेद की अपेक्षा से जीवों का परिचय करना वेद मार्गणा है। वेद के मूलतः तीन भेद हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद एवं नपुंसक वेद। द्रव्यवेद और भाववेद की अपेक्षा तीनों वेद दो प्रकार के होते हैं।

वेद नोकषाय के उदय से स्त्री की पुरुषाभिलाषा, पुरुष की स्त्री सम्बन्धी अभिलाषा और नपुंसक की उभय मुखी अभिलाषा को भाव वेद कहते हैं। तथा नामकर्म के उदय से उत्पन्न स्त्री, पुरुष और नपुंसक के बाह्य चिह्नों को द्रव्यवेद कहते हैं। पुरुषवेद तृण की आग के समान, स्त्रीवेद कंडे की आग के समान एवं नपुंसकवेद ईंट पकाने के अवा की आग के समान होता है।

विशेष-कर्मभूमि के मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों में द्रव्यवेद व भाववेद में असमानता भी पाई जाती है। जैसे-कोई द्रव्य से पुरुष वेद है, उसके भाव से तीन में से कोई भी वेद हो सकता है। इसी प्रकार स्त्रीवेद व नपुंसकवेद में भी हो सकता है किन्तु देव, नारकी तथा भोगभूमि के मनुष्यों व तिर्यञ्चों में जैसा

के गुणस्थान 1 से 5 तक हो सकते हैं।

कषाय मार्गणा

जो आत्मा के सम्यक्त्वादि गुणों का घात करें, उसे कषाय कहते हैं। इसके 25 भेद हैं -

1-4.अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ-जो आत्मा के सम्यक्त्व तथा चारित्र गुण का घात करती है ।

5-8.अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ-जो कषाय एक देश चारित्र का घात करती है।

9-12. प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया,लोभ-जो कषाय सकल संयम का घात करती है।

13-16.संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ-जो कषाय यथाख्यात संयम का घात करती है।

नो कषाय - नो अर्थात् ईषत् (किंचित्) कषाय का वेदन करावे, उसे नो कषाय कहते हैं।

17. हास्य - जिसके उदय से हँसी आवे।

18. रति - जिसके उदय से क्षेत्र आदि में प्रीति हो।

19. अरति - जिसके उदय से क्षेत्र आदि में अप्रीति हो।

20. शोक - जिसके उदय से इष्ट वियोगज क्लेश उत्पन्न हो।

21. भय - जिसके उदय से भय उत्पन्न हो।

22. जुगुप्सा - जिसके उदय से ग्लानि उत्पन्न हो।

23. स्त्रीवेद - जिसके उदय से स्त्री सम्बन्धी भावों को प्राप्त हो।

24. पुरुषवेद - जिसके उदय से पुरुष सम्बन्धी भावों को प्राप्त हो।

25. नपुंसकवेद- जिसके उदय से नपुंसक सम्बन्धी भावों को प्राप्त हो।

विशेष-जहाँ अनन्तानुबन्धी कषाय है वहाँ नियम से अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण एवं संज्वलन कषाय भी रहेगी। इसी प्रकार जहाँ अप्रत्याख्यानावरण कषाय है, वहाँ प्रत्याख्यानावरण एवं संज्वलन कषाय भी

वहाँ रति कषाय भी रहेगी। इसी प्रकार जहाँ शोक कषाय है वहाँ अरति कषाय भी रहेगी। भय और जुगुप्सा कषाय में से कोई भी एक या दोनों या दोनों कषायों से रहित भी हो सकता है ।

ज्ञान मार्गणा

जो जानता है, वह ज्ञान है, ज्ञान की अपेक्षा से जीवों का परिचय करना ज्ञान मार्गणा है। इसके आठ भेद हैं –

1. **कुमतिज्ञान**–सम्यक्त्व के न होने पर होने वाले मतिज्ञान को कुमतिज्ञान कहते हैं।

2. **कुश्रुतज्ञान**–सम्यक्त्व के न होने पर होने वाले श्रुतज्ञान को कुश्रुतज्ञान कहते हैं।

3. **कुअवधिज्ञान**–सम्यक्त्व के न होने पर होने वाले अवधिज्ञान को कुअवधिज्ञान कहते हैं। इसका दूसरा नाम विभङ्गज्ञान भी है।

4. **मतिज्ञान** – जो ज्ञान पाँच इन्द्रिय और मन के द्वारा होता है, उसे मतिज्ञान कहते हैं।

5. **श्रुतज्ञान** – मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ का जो विशेष ज्ञान होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे –''जीवः अस्ति'' ऐसा शब्द कहने पर कर्ण (श्रोत्र) इन्द्रिय रूप मतिज्ञान के द्वारा ''जीवः अस्ति'' यह शब्द ग्रहण किया। इस शब्द से जो ''जीव नामक पदार्थ है'' ऐसा ज्ञान हुआ सो श्रुतज्ञान है। यह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है । और जो अक्षर के निमित्त से उत्पन्न नहीं होता है, उसे अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे- शीतल पवन का स्पर्श होने पर वहाँ शीतल पवन का जानना तो मतिज्ञान है, और उस ज्ञान से वायु की प्रकृति वाले को यह पवन अनिष्ट है, ऐसा जानना श्रुतज्ञान है।

6. **अवधिज्ञान** – द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिए हुए रूपी पदार्थों का इन्द्रियादिक की सहायता के बिना जो प्रत्यक्ष ज्ञान होता है, वह अवधिज्ञान है।

7. **मनःपर्ययज्ञान** –इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना ही दूसरे के प्रयोग छठवें गुणस्थान में होता है। इसके साथ प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन, आहारक काययोग, आहारकमिश्र काययोग, परिहार विशुद्धि संयम, स्त्रीवेद एवं नपुंसक वेद नहीं होता है।

8. **केवलज्ञान** – जो त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यों की अनन्त पर्यायों को एक साथ स्पष्ट रूप से जानता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

संयम मार्गणा

प्राणियों और इन्द्रियों के विषय में अशुभ प्रवृत्ति का त्याग करना संयम है। संयम की अपेक्षा से जीवों का परिचय करना संयम मार्गणा है। इसके सात भेद हैं –

1. **असंयम**–जहाँ किसी प्रकार के संयम या संयमासंयम का अंश भी न हो, उसे असंयम कहते हैं।

2. **संयमासंयम**–सम्यग्दर्शन के साथ पाँचों पापों का एक देश त्याग करने को संयमासंयम कहते हैं।

3. **सामायिक चारित्र** –सर्वकाल में सम्पूर्ण सावद्य का त्याग करना सामायिक चारित्र है।

4. **छेदोपस्थापना चारित्र** – प्रमाद के निमित्त से व्रतों में दोष होने पर भली प्रकार से उसको दूर कर अपने आप को पुनः उसी में स्थापित करना छेदोपस्थापना चारित्र है।

5. **परिहार विशुद्धि संयम** – प्राणी वध से निवृत्ति को परिहार कहते हैं। इस युक्त शुद्धि जिस संयम में होती है, उसे परिहार विशुद्धि संयम कहते हैं। इनके शरीर से किसी भी जीव का घात नहीं होता है। इस संयम वाले मुनि तीनों सन्ध्याकालों को छोड़कर प्रतिदिन दो कोस (6 किलोमीटर) विहार करते हैं। रात्रि में विहार (गमन) नहीं करते हैं। परिहार विशुद्धि संयम के साथ आहारक काययोग, आहारकमिश्र काययोग, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, मनःपर्ययज्ञान एवं उपशम सम्यग्दर्शन नहीं रहता है।

विशेष –जो तीस वर्ष तक घर में रहकर इसके पश्चात् मुनि दीक्षा लेते

गई हो,उसे सूक्ष्म साम्पराय संयम कहते हैं।

7. यथाख्यात संयम - समस्त मोहनीय कर्म के उपशम या क्षय से जहाँ यथा अवस्थित आत्म-स्वभाव की उपलब्धि हो जाती है। उसे यथाख्यात संयम कहते हैं।

दर्शन मार्गणा

''विषय विषयि सन्निपाते सति दर्शनं भवति''। विषय और विषयी का सन्निपात होने पर ज्ञान के पूर्व जो सामान्य प्रतिभास होता है, उसे दर्शन कहते हैं। दर्शन की अपेक्षा से जीवों का परिचय करना दर्शन मार्गणा है। इसके चार भेद हैं -

1. चक्षुदर्शन - चक्षु इन्द्रिय से होने वाले ज्ञान के पहले पदार्थ का जो सामान्य प्रतिभास होता है, उसे चक्षुदर्शन कहते हैं।

2. अचक्षुदर्शन-चक्षु इन्द्रिय के बिना अन्य इन्द्रियों और मन से होने वाले ज्ञान के पूर्व पदार्थ का जो सामान्य प्रतिभास होता है, उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं।

3. अवधिदर्शन-अवधिज्ञान के पूर्व होने वाला सामान्य प्रतिभास अवधिदर्शन है।

4. केवलदर्शन - केवलज्ञान के साथ होने वाले सामान्य प्रतिभास को केवलदर्शन कहते हैं।

लेश्या मार्गणा

''लिम्पतीति लेश्या''- जो लिम्पन करती है, उसको लेश्या कहते हैं। अर्थात् जो कर्मों से आत्मा को लिप्त करती है, उसको लेश्या कहते हैं। लेश्या की अपेक्षा से जीवों का परिचय करना लेश्या मार्गणा है । इसके छः भेद हैं -

1. कृष्ण लेश्या-तीव्र क्रोध करने वाला हो, शत्रुता को न छोड़ने वाला हो, लड़ना जिसका स्वभाव हो, धर्म और दया से रहित हो, दुष्ट हो आदि। ये सब लक्षण कृष्ण लेश्या वाले जीव के हैं।

3. कापोत लेश्या- शोकाकुल, सदारुष्ट, परनिंदक, आत्म-प्रशंसक, संग्राम में माहिर आदि कापोत लेश्या के लक्षण हैं।

4. पीत लेश्या-प्रबुद्ध (जागृत), करुणा युक्त, जो कार्य-अकार्य का विचार करने वाला हो, लाभालाभ में समता रखने वाला हो आदि। पीत लेश्या के लक्षण हैं।

5. पद्म लेश्या-दयाशील हो, त्यागी हो, भद्र हो, साधुजनों की पूजा में निरत हो, बहुत अपराध या हानि पहुँचाने वाले को भी क्षमा कर दे, आदि पद्म लेश्या के लक्षण हैं।

6. शुक्ल लेश्या-जो शत्रु के दोषों पर भी दृष्टि न देने वाला हो, जिसे पर से राग द्वेष व स्नेह न हो आदि शुक्ल लेश्या के लक्षण हैं।

भव्य मार्गणा

भव्य और अभव्य के माध्यम से जीवों का परिचय करना भव्य मार्गणा है। इसके दो भेद हैं - भव्य और अभव्य।

1. भव्य - जिसके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र भाव प्रकट होने की योग्यता है, वह भव्य है ।

2. अभव्य - जिसके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र भाव प्रकट होने की योग्यता नहीं है, वह अभव्य है।

सम्यक्त्व मार्गणा

सात तत्त्वों तथा सच्चे देव, शास्त्र और गुरु का यथार्थ श्रद्धान प्रकट होने पर होने वाली आत्मा की उस शुद्ध परिणति को सम्यक्त्व कहते हैं। सम्यक्त्व की अपेक्षा जीवों का परिचय करने को सम्यक्त्व मार्गणा कहते हैं। इसके छः भेद हैं -

1. मिथ्यात्व - मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से होने वाले तत्त्वार्थ के अश्रद्धान रूप परिणामों को मिथ्यात्व कहते हैं।

2. सासादन - उपशम सम्यक्त्व के काल में कम से कम एक समय और अधिक से अधिक छः आवली शेष रहने पर अनन्तानुबन्धी कषाय के चार भेदों में से किसी एक कषाय का उदय होने से उपशम सम्यक्त्व से च्युत होने पर

3. सम्यग्मिथ्यात्व - जिसमें सम्यक् और मिथ्यारूप मिश्रित श्रद्धान पाया जाए, उसे सम्यग्मिथ्यात्व या मिश्र सम्यक्त्व कहते हैं।

4. (अ) प्रथमोपशम सम्यक्त्व[1]- दर्शन मोहनीय की मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति, सम्यक् प्रकृति और अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात प्रकृतियों के उपशम से जो सम्यक्त्व होता है, उसे प्रथमोपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

विशेष -प्रथमोपशम सम्यक्त्व के साथ मरण नहीं होता है एवं आयुबन्ध भी नहीं होता है ।

(ब) द्वितीयोपशम सम्यक्त्व - जो क्षयोपशम सम्यक्त्व पूर्वक होता है, उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं। यह भी सात प्रकृतियों के उपशम से होता है। सप्तम गुणस्थानवर्ती मुनि यदि उपशम श्रेणी चढ़े तो उसके पास क्षायिक सम्यक्त्व या द्वितीयोपशम सम्यक्त्व आवश्यक है। अनेक आचार्यों के मतानुसार द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चतुर्थ गुणस्थान से सप्तम गुणस्थानवर्ती क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि प्राप्त करता है।

विशेष-यह द्वितीयोपशम सम्यक्त्व ग्यारहवें गुणस्थान तक रहता है। वहाँ अर्थात् उपशम श्रेणी में मरण हुआ तो देवगति में ही जाएगा। देवगति की अपर्याप्त अवस्था में चतुर्थ गुणस्थान में द्वितीयोपशम सम्यक्त्व रहेगा एवं वैक्रियिकमिश्र काययोग में ही द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को नियम से क्षयोपशम कर लेगा। मरण नहीं हुआ तो गिरते-गिरते चतुर्थ गुणस्थान तक आ सकता है। वहाँ द्वितीयोपशम सम्यक्त्व रहेगा बाद में या तो क्षयोपशम कर लेगा या फिर और नीचे मिथ्यात्व में भी आ सकता है।

5.क्षयोपशम (वेदक) - अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व इन 6 प्रकृतियों के उदयाभावी क्षय व उपशम से तथा सम्यक् प्रकृति के उदय से जो सम्यक्त्व होता है, उसे क्षयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

1. अनादि मिथ्यादृष्टि तो पाँच प्रकृतियों का उपशम करता है एवं सादि मिथ्यादृष्टि पाँच, छः या सात प्रकृतियों का उपशम करता है ।

संज्ञी मार्गणा

संज्ञी और असंज्ञी के माध्यम से जीवों के परिचय करने को संज्ञी मार्गणा कहते हैं। इसके दो भेद हैं।

1. संज्ञी-जो जीव शिक्षा, उपदेश, क्रिया और आलाप को ग्रहण करते हैं, उन्हें संज्ञी कहते हैं।

2. असंज्ञी-जो जीव शिक्षा उपदेश, क्रिया और आलाप को ग्रहण नहीं करते हैं, उन्हें असंज्ञी कहते हैं।

आहारक मार्गणा

आहारक एवं अनाहारक के माध्यम से जीवों के परिचय करने को आहारक मार्गणा कहते हैं इसके दो भेद हैं -

1. आहारक -जो तीन शरीर और छः पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल वर्गणाओं को ग्रहण करता है, उसे आहारक कहते हैं।

2. अनाहारक - तीन शरीर और छः पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल वर्गणाओं को जो ग्रहण नहीं करता है, उसे अनाहारक कहते हैं। विग्रहगति में, तेरहवें गुणस्थान के प्रतर, लोकपूरण समुद्घात में एवं चौदहवें गुणस्थान में जीव अनाहारक होता है।

विशेष-यहाँ पर आहार शब्द से कवलाहार, लेपाहार, ओजाहार, मानसिकाहार, कर्माहार को छोड़कर नोकर्माहार को ही ग्रहण करना है।

गुणस्थान

मोह और योग के निमित्त से होने वाले आत्मा के परिणाम को गुणस्थान कहते हैं। गुणस्थान चौदह होते हैं।

1. मिथ्यात्व गुणस्थान - मिथ्यात्व के उदय से जिस जीव के सात तत्त्वों का यथार्थ श्रद्धान नहीं होता उसका यह प्रथम गुणस्थान है।

2. सासादन गुणस्थान - उपशम सम्यक्त्व से पतित होकर जीव जब तक मिथ्यात्व गुणस्थान में नहीं आता तब तक उसे सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं। इस गुणस्थान का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट से छः आवली है ।

4. अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान–जहाँ सम्यग्दर्शन तो प्रकट हो गया हो किन्तु किसी भी प्रकार का व्रत (संयमासंयम या सकल संयम) न हुआ हो उसे असंयत सम्यग्दृष्टि या अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहते हैं।

5. देशविरत गुणस्थान – इस गुणस्थान का धारक एक ही समय में संयत और असंयत दोनों होता है। वह श्रावक त्रसहिंसा से विरत होने से संयत है और स्थावर हिंसा से विरत न होने से असंयत है, अतः उसे देशविरत या संयमासंयम गुणस्थान कहते हैं।

6. प्रमत्तविरत गुणस्थान –जहाँ सकल संयम प्रकट हो गया है किन्तु संज्वलन कषाय का तीव्र उदय होने से प्रमाद हो, उसे प्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं।

7. अप्रमत्त विरत गुणस्थान – जहाँ संज्वलन कषाय का मन्द उदय हो जाने से प्रमाद नहीं रहा उस परिणाम को अप्रमत्तविरत गुणस्थान कहते हैं।

8. अपूर्वकरण गुणस्थान –इस गुणस्थान में सम-समयवर्ती जीवों के परिणाम समान असमान दोनों होते हैं, किन्तु भिन्न समय में रहने वाले जीव के परिणाम भिन्न ही होते हैं। यहाँ मुनिराज पूर्व में कभी भी प्राप्त नहीं हुए थे, ऐसे अपूर्व परिणामों को धारण करते हैं इसलिए इस गुणस्थान का नाम अपूर्वकरण गुणस्थान है।

9. अनिवृत्तिकरण गुणस्थान–अनिवृत्तिकरण के अन्तर्मुहूर्त काल में से किसी एक समय में रहने वाले अनेक जीव जिस प्रकार शरीर के आकार आदि से परस्पर में भिन्न-भिन्न होते हैं, किन्तु उनके परिणामों में भेद नहीं पाया जाता है,उसे अनिवृत्तिकरण गुणस्थान कहते हैं।

10. सूक्ष्म साम्पराय गुणस्थान–जिस गुणस्थान में संज्वलन लोभ कषाय का अत्यन्त सूक्ष्म उदय होता है, उसे सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान कहते हैं।

11. उपशान्तमोह गुणस्थान –समस्त मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले गुणस्थान को उपशांत मोह गुणस्थान कहते हैं।

12. क्षीणमोह गुणस्थान – समस्त मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न आत्मा का विशुद्ध परिणाम क्षीणमोह गुणस्थान कहलाता है।

केवली कहते हैं।

14. अयोगकेवली गुणस्थान – सयोग केवली के जब योग नष्ट हो जाते हैं एवं जब तक शरीर से मुक्त नहीं होते हैं, तब तक इनको अयोग केवली कहते हैं। अयोगकेवली का काल 5 ह्रस्व अक्षर (अ,इ,उ,ऋ,ऌ) बोलने में जितना समय लगता है, उतना ही है। इनके उपान्त्य समय में 72 एवं अन्तिम समय में 13 प्रकृतियों का क्षय हो जाता है।

जीवसमास

(अ) अनन्तानन्त जीव और उनके भेद-प्रभेदों का जिनमें संग्रह किया जाए उन्हें जीवसमास कहते हैं।

(ब) जिसमें जीव भले प्रकार रहते हैं अर्थात् पाये जाते हैं, उसे जीवसमास कहते हैं।

सूक्ष्म जीव– सूक्ष्म नामकर्म के उदय से वह जीव न तो किसी को बाधा पहुँचाता है और न ही किसी से बाधित होता है, उसे सूक्ष्म जीव कहते हैं। इसका उदय मात्र एकेन्द्रिय जीवों में रहता है।

बादर जीव– बादर नामकर्म के उदय से वह जीव दूसरों को भी बाधा पहुँचाता है एवं दूसरे से बाधित भी होता है, उसे बादरजीव कहते हैं। एकेन्द्रिय में सूक्ष्म-बादर दोनों होते हैं तथा द्वीन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक बादर ही होते हैं।

सूक्ष्म पृथ्वीकायिक– जिस नामकर्म के उदय से जीव सूक्ष्म पृथ्वी को ही अपना शरीर बनाते हैं, उसे सूक्ष्म पृथ्वीकायिक कहते हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म जलकायिक, सूक्ष्म अग्निकायिक एवं सूक्ष्म वायुकायिक जानना चाहिए।

बादर पृथ्वीकायिक– जिस नामकर्म के उदय से जीव बादर पृथ्वी को ही अपना शरीर बनाते हैं, उसे बादर पृथ्वीकायिक कहते हैं। इसी प्रकार बादर जलकायिक, बादर अग्निकायिक, बादर वायुकायिक जानना चाहिए।

वनस्पतिकायिक–वनस्पतिकायिक नामकर्म के उदय जो जीव वनस्पति को ही अपना शरीर बनाता है, उसे वनस्पतिकायिक कहते हैं। वनस्पति के दो भेद हैं-

2. साधारण वनस्पति-जिन वनस्पतिकायिक जीवों का शरीर साधारण है अर्थात् एक शरीर के स्वामी अनेक जीव हैं, उन्हें साधारण वनस्पतिकायिक कहते हैं। इनको निगोदिया जीव भी कहते हैं।

प्रत्येक वनस्पति के दो भेद

1. सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति - जिस एक शरीर में जीव के मुख्य रहने पर भी उसके आश्रय से अनेक निगोदिया जीव रहें, वह सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति है।

2. अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति -जिसके आश्रय से कोई भी निगोदिया जीव न हों, वह अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति है।

साधारण वनस्पति के दो भेद हैं।

1. नित्य निगोद - जिन्होंने अनादिकाल से आज तक निगोद के अलावा कोई पर्याय प्राप्त नहीं की है, वह नित्य निगोद हैं।

2. इतर निगोद -जो नित्य निगोद से निकलकर, अन्य पर्याय प्राप्त कर पुनः निगोद में आ गए हैं, वे इतर निगोद हैं।

दो इन्द्रिय -जिसके स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियाँ होती हैं, उसे दो इन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे-लट, केंचुआ, जोंक, सीप, कौड़ी,शंख आदि।

तीन इन्द्रिय-जिसके स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं, उसे तीन इन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे-चींटी, खटमल, बिच्छू, घुन, गिजाई आदि।

चार इन्द्रिय-जिसके स्पर्शन,रसना,घ्राण और चक्षु, ये चार इन्द्रियाँ होती हैं, उसे चार इन्द्रिय जीव कहते हैं। जैसे-भौंरा, मच्छर, टिड्डी, मधुमक्खी, मक्खी, बर्र, ततैया आदि।

असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय- जिनके स्पर्शन, रसना, घ्राण चक्षु और कर्ण ये पाँच इन्द्रियाँ होती हैं, किन्तु मन नहीं होता, उन्हें असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय कहते हैं। जैसे-कुछ सरीसृप एवं कुछ तोते।

नोट - जिसके द्वारा शिक्षा व उपदेश ग्रहण किया जाता है, उसे मन कहते हैं।

पर्याप्ति का लक्षण व भेद

जन्म के प्रथम समय से पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण कर जीवन धारण में विशेष प्रकार की पौद्गलिक शक्ति की प्राप्ति को पर्याप्ति कहते हैं। पर्याप्ति के छः भेद हैं। आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मनःपर्याप्ति।

1. आहार पर्याप्ति - एक शरीर को छोड़कर नवीन शरीर के साधनभूत जिन नोकर्म वर्गणाओं को जीव ग्रहण करता है । उन वर्गणाओं के परमाणुओं को ठोस (Solid) और तरल (Liquid) रूप में परिणमन (परिवर्तन) के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को आहार पर्याप्ति कहते हैं।

2. शरीर पर्याप्ति - जिन परमाणुओं को ठोस रूप परिवर्तित किया था उसको हड्डी आदि कठिन अवयव रूप और जिनको तरल रूप परिवर्तित किया था, उनको रुधिरादि रूप में परिवर्तित करने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को शरीर पर्याप्ति कहते हैं।

3. इन्द्रिय पर्याप्ति - आहार वर्गणा के परमाणुओं को इन्द्रिय आकार रूप परिवर्तित करने को तथा इन्द्रिय द्वारा विषय ग्रहण करने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं।

4. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति-आहार वर्गणा के परमाणुओं को श्वासोच्छ्वास रूप परिवर्तित करने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं।

5. भाषा पर्याप्ति -भाषा वर्गणा के परमाणुओं को वचन रूप परिवर्तित करने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को भाषा पर्याप्ति कहते हैं।

6. मनःपर्याप्ति-मनोवर्गणा के परमाणुओं को हृदयस्थान में अष्ट पाखुडी के कमलाकार मन रूप परिवर्तित करने को तथा उसके द्वारा यथावत्

पर्याप्तक - पर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त जिन जीवों की सभी पर्याप्ति पूर्ण हो जाती हैं, उसे पर्याप्तक जीव कहते हैं।

विशेष - किन्हीं आचार्यों ने सभी पर्याप्ति पूर्ण होने पर पर्याप्तक कहा है। किन्हीं आचार्यों ने शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने पर पर्याप्तक कहा है।

निर्वृत्यपर्याप्तक-पर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त जिन जीवों की पर्याप्तियाँ प्रारम्भ हो गई हैं एवं नियम से पूर्ण होगी एवं जब तक पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती है तब तक उन्हें निर्वृत्यपर्याप्तक जीव कहते हैं।

लब्ध्यपर्याप्तक -अपर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त जीव, जिसने पर्याप्तियाँ प्रारम्भ की हैं, किन्तु एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं करता और मरण हो जाता है, उसे लब्ध्यपर्याप्तक जीव कहते हैं। इनकी आयु श्वास के 18 वें भाग मात्र होती है।

प्राण

जिनके द्वारा जीव जीता है, उन्हें प्राण कहते हैं।

1. इन्द्रिय प्राण- द्रव्येन्द्रियों के निमित्त से उत्पन्न हुये क्षायोपशमिक भाव को इन्द्रिय प्राण कहते हैं।

2. बल प्राण- अनन्तशक्ति के एक भाग प्रमाण मन, वचन और काय के निमित्त से उत्पन्न हुए ब्रल को बल प्राण कहते हैं।

3. आयु प्राण- जिसके उदय से भव सम्बन्धी जीवन और क्षय से मरण होता है, उसे आयु प्राण कहते हैं।

4. श्वासोच्छ्वास प्राण- शरीर से किसी भी प्रकार के वायु के आने-जाने को श्वासोच्छ्वास प्राण कहते हैं। मुख से श्वास, उच्छ्वास निकलना। रोमछिद्रों से वायु का आना-जाना। नाड़ी द्वारा संचरण होना इत्यादि।

संज्ञा

आहारादि विषयों की अभिलाषा को संज्ञा कहते हैं।

आहार संज्ञा- बहिरङ्ग में आहार के देखने से, उदररूप कोष्ठ के आने से शक्ति की हीनता होने पर अन्तरङ्ग में भय कषाय की उदीरणा होने पर भय संज्ञा उत्पन्न होती है।

मैथुन संज्ञा- बहिरङ्ग में गरिष्ठ,स्वादिष्ट और रसयुक्त भोजन करने से, पूर्व भुक्त विषयों का ध्यान करने से तथा अन्तरङ्ग में वेद कषाय की उदीरणा होने पर मैथुन संज्ञा उत्पन्न होती है।

परिग्रह संज्ञा - बहिरङ्ग में भोगोपभोग सामग्री के देखने से तथा अन्तरङ्ग में लोभ कषाय की उदीरणा होने पर परिग्रह संज्ञा उत्पन्न होती है।

उपयोग

चेतना की परिणति विशेष का नाम उपयोग है। चेतना सामान्य गुण है और ज्ञान दर्शन ये दो इसकी पर्याय या अवस्थाएँ हैं। इन्हीं को उपयोग कहते हैं। उपयोग दो प्रकार के हैं-

साकारोपयोग- ज्ञानोपयोग को कहते हैं।

निराकारोपयोग- दर्शनोपयोग को कहते हैं।

ध्यान

एक पदार्थ में मन को केन्द्रित करना ध्यान है। ध्यान के मूल में 4 भेद हैं-

1. आर्तध्यान -आर्तध्यान-आर्तनाम दुःख का है। दुःखानुभव में चित्त का रुकना आर्तध्यान है, इसके चार भेद हैं-इष्ट वियोगज, अनिष्ट संयोगज, वेदनाजन्य एवं निदान।

1. इष्ट का वियोग होने पर उसकी प्राप्ति के लिए बार-बार चिन्तन करना इष्ट वियोगज आर्तध्यान है। जैसे-किसी प्रिय वस्तु को खो जाने पर उसकी प्राप्ति का निरंतर चिन्तन करना।

2. अनिष्ट का संयोग होने पर उसको दूर करने का बार-बार चिन्तन करना अनिष्ट संयोगज आर्तध्यान है। जैसे-किसी गलत किरायेदार के मिल जाने पर उसको हटाने का निरंतर चिन्तन करना।

3. शरीर में रोग की पीड़ा होने पर उसे दूर करने का बार-बार चिन्तन करना पीड़ा चिन्तन आर्तध्यान है। जैसे-कैंसर आदि हो जाने पर उसको इलाज

2. रौद्रध्यान - क्रूर परिणामों से उत्पन्न हुए ध्यान को रौद्रध्यान कहते हैं। इसके चार भेद हैं -हिसानंद, मृषानंद, चौर्यानन्द और परिग्रहानन्द।

1. हिंसा में आनन्द मानना हिंसानंद रौद्रध्यान है।

2. झूठ बोलने में आनन्द मानना मृषानंद रौद्रध्यान है।

3. चोरी करने में आनन्द मानना चौर्यानंद रौद्रध्यान है।

4. परिग्रह के संचय व रक्षण में आनन्द मानना परिग्रहानंद रौद्रध्यान है।

3. धर्म्यध्यान -

1. शुभ विचारों में मन का स्थिर होना धर्म्यध्यान है।

2. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र को धर्म कहते हैं और उस धर्म से युक्त जो चिंतन होता है, उसे धर्म्यध्यान कहते हैं।

3. मोह तथा क्षोभ से रहित जो आत्मा का परिणाम है, वह धर्म कहलाता है। उस धर्म से उत्पन्न जो ध्यान है, उसे धर्म्यध्यान कहते हैं।

इसके चार भेद हैं-आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय एवं संस्थानविचय।

1.आज्ञाविचय -जो इन्द्रियों से दिखाई नहीं देते ऐसे बंध, मोक्ष आदि पदार्थों में जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा के अनुसार निश्चय कर ध्यान करना सो आज्ञाविचय धर्म्यध्यान है।

2.अपायविचय - संसार में भटकते प्राणी मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याचारित्र से कैसे दूर हों, इस प्रकार निरंतर चिंतन करना अपाय विचय धर्म्यध्यान है, यह नारकियों को नहीं होता है, क्योंकि नारकी दूसरों का दुःख दूर हो, ऐसा सोच ही नहीं सकते।

3.विपाकविचय -(अ) कर्मों के उदय से सुख-दुःख होता है, ऐसा चिंतन करना विपाक विचय धर्म्यध्यान है। (ब) जीवों को जो एक, अनेक भव में पुण्य-पाप कर्मों का फल प्राप्त होता है, उसके उदय, उदीरणा, संक्रमण, बंध और मोक्ष का चिंतन करना विपाकविचय धर्म्यध्यान है।

है, उसे शुक्लध्यान कहते हैं।

इसके चार भेद हैं-पृथक्त्ववितर्क वीचार, एकत्ववितर्क अवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति एवं व्युपरतक्रियानिवृत्ति।

1. पृथक्त्ववितर्क वीचार-पृथक्-पृथक् अर्थ, व्यञ्जन, योग की संक्रान्ति और श्रुत जिसका आधार है, वह पृथकत्ववितर्क वीचार ध्यान है।

वितर्क=श्रुतज्ञान। वीचार=संक्रान्ति। संक्रान्ति तीन प्रकार की होती है-अर्थसंक्रान्ति, व्यञ्जन संक्रान्ति एवं योग संक्रान्ति।

अर्थ संक्रान्ति-ध्यान करने योग्य पदार्थ में द्रव्य को छोड़कर उसकी पर्याय का ध्यान किया जाता है अथवा पर्याय को छोड़कर द्रव्य का ध्यान किया जाता है।

व्यञ्जन संक्रान्ति-वचन को व्यञ्जन कहते हैं। एक श्रुतवचन का आलम्बन लेकर दूसरे श्रुतवचन का आलम्बन होता है और उसे भी छोड़कर अन्य वचन का आलम्बन होना व्यञ्जन संक्रान्ति है।

योगसंक्रान्ति-मनोयोग को छोड़कर वचनयोग का ग्रहण करना उसे भी छोड़कर काययोग को ग्रहण करना योग संक्रान्ति है।

2. एकत्ववितर्क अवीचार - जो शुक्लध्यान तीन योगों में से किसी एक योग के साथ होता है तथा अर्थ, व्यञ्जन और योग की संक्रान्ति से रहित है वह एकत्ववितर्क अवीचार शुक्ल -ध्यान है।

3. सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति-जब सयोग केवली भगवान् का आयुकर्म अन्तर्मुहूर्त शेष रहता है तब सब प्रकार के वचनयोग, मनोयोग और बादरकाययोग को त्यागकर मात्र सूक्ष्म काययोग रहता है तब सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान होता है। सूक्ष्म= सूक्ष्म। क्रिया= योग। अप्रतिपाति = गिरता नहीं, अर्थात् ऊपर ही जाता है।

4. व्युपरतक्रियानिवृत्ति-वि+उपरत+क्रिया+अनिवृत्ति।

आस्त्रव

कर्मों के आने के द्वार को आस्त्रव कहते हैं। इसके 57 भेद हैं - मिथ्यात्व 5, योग 15, अविरति 12, कषाय 25

मिथ्यात्व

मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से तत्त्वों के अश्रद्धान रूप विपरीत अभिप्राय को मिथ्यात्व कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं।

एकान्त मिथ्यात्व - अनेकान्त धर्म को न मानकर एकान्त को ही धर्म मानना जैसे-जीव नित्य ही है, जीव अनित्य ही है आदि।

विपरीत मिथ्यात्व- सपरिग्रह भी निर्ग्रन्थ हो सकता है, केवली कवलाहारी है, स्त्रीमुक्त हो सकती है आदि विपरीत अभिप्राय विपरीत मिथ्यात्व है।

संशय मिथ्यात्व- जिनेन्द्र देव के वचनों में सन्देह करना संशय मिथ्यात्व है। जैसे - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र मोक्ष के मार्ग हैं या नहीं।

वैनयिक मिथ्यात्व- सभी देवताओं और सभी शास्त्रों में बिना विवेक के समान भाव रखना, वैनयिक मिथ्यात्व है।

अज्ञान मिथ्यात्व-हित और अहित की परीक्षा से रहित होना अज्ञान मिथ्यात्व है।

योग का वर्णन पहले हो चुका है।

अविरति - 5 इन्द्रियों तथा मन इन 6 के विषयों से विरत न होना तथा 5 स्थावर एवं त्रस इन षट्काय के जीवों की रक्षा न करना अविरति है।

कषाय का वर्णन पहले हो चुका है।

जाति- उत्पत्ति स्थान को योनि या जाति कहते हैं।

कुल- जाति के भेदों को कुल कहते हैं।

4	गति	सब
5	इन्द्रिय	सब
6	काय	सब
13	योग	आहारक द्विक बिना
3	वेद	सब
25	कषाय	सब
3	ज्ञान	कुज्ञान 3
1	संयम	असंयम
2	दर्शन	चक्षु,अचक्षु
6	लेश्या	सब
2	भव्य	दोनों
1	सम्यक्त्व	मिथ्यात्व सम्यक्त्व
2	संज्ञी	दोनों
2	आहारक	दोनों
1	गुणस्थान	मिथ्यात्व
19	जीवसमास	सब
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
5	उपयोग	कुज्ञान 3, दर्शन 2
8	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4
55	आस्त्रव	आहारक द्विक बिना
84 लाख	जाति	सब
199.5 लाख कोटि	कुल	सब

4	गति	सब
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
13	योग	आहारक द्विक बिना
3	वेद	सब
25	कषाय	सब
3	ज्ञान	कुज्ञान 3
1	संयम	असंयम
2	दर्शन	चक्षु, अचक्षु
6	लेश्या	सब
1	भव्य	भव्य
1	सम्यक्त्व	सासादन सम्यक्त्व
1	संज्ञी	संज्ञी
2	आहारक	दोनों
1	गुणस्थान	सासादन
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
5	उपयोग	कुज्ञान 3, दर्शन 2
8	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4
50	आस्रव	अविरति 12, योग 13, कषाय 25
26 लाख	जाति	पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी
108.5 लाख कोटि	कुल	पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी

4	गति	सब
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
10	योग	मन4,वचन4,औ. 1 और वैक्रि.1[1]
3	वेद	सब
21	कषाय	अनन्तानुबन्धी 4 बिना
3	ज्ञान	मिश्रज्ञान[2]
1	संयम	असंयम
2	दर्शन	चक्षु,अचक्षु[3]
6	लेश्या	सब
1	भव्य	भव्य
1	सम्यक्त्व	मिश्रसम्यक्त्व
1	संज्ञी	संज्ञी
1	आहारक	आहारक
1	गुणस्थान	मिश्र
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
5	उपयोग	मिश्रज्ञान 3, दर्शन 2
9	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4, धर्म्य 1[4]
43	आस्रव	योग 10, अविरति 12, कषाय 21
26 लाख	जाति	पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी
108.5 लाख कोटि	कुल	पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी

1. मिश्र गुणस्थान में मरण नहीं होता है। अत: इसमें यहाँ कार्मणकाययोग, औदारिक मिश्रकाययोग, वैक्रियिकमिश्रकाययोग नहीं बनेगा।
2. कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान1 और 2 गुणस्थान में होते हैं और मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान 4 से 12 वें गुणस्थान तक होते हैं, किन्तु मिश्र गुणस्थान में दोनों से मिश्र तीन ज्ञान माने गए हैं। उदाहरण-खिचड़ी।
3. अवधिदर्शन किस गुणस्थान से प्रारम्भ होता है, इसमें आचार्यों में मतभेद है। आचार्य वीरसेन स्वामी ने प्रथम गुणस्थान से,आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने तृतीय गुणस्थान से एवं आचार्य पुष्पदन्त भूतबली ने सत् प्ररुपणा में अवधि दर्शन चतुर्थ गुणस्थान से माना है अत: उसको मुख्य मानकर तृतीय गुणस्थान में दो दर्शन चक्षुदर्शन एवं अचक्षु दर्शन लिये हैं।
4. धर्म्यध्यान भी चौथे गुणस्थान से माना है। किन्तु यहाँ मिथ्यात्व सम्यक्त्व के मिश्र परिणामों से 1 धर्म्यध्यान माना है।

4	गति	सब
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
13	योग	आहारक द्विक बिना
3	वेद	सब
21	कषाय	अनन्तानुबन्धी 4 बिना
3	ज्ञान	सुज्ञान 3
1	संयम	असंयम
3	दर्शन	चक्षु, अचक्षु, अवधि
6	लेश्या	सब
1	भव्य	भव्य
3	सम्यक्त्व	उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक
1	संज्ञी	संज्ञी
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
1	गुणस्थान	अविरत
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
6	उपयोग	ज्ञान 3, दर्शन 3
10	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4, धर्म्य 2
46	आस्त्रव	योग13 , अविरति12, कषाय 21
26 लाख	जाति	पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी
108.5 लाख कोटि	कुल	पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी

2	गति	तिर्यञ्च, मनुष्य
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
9	योग	मन 4, वचन 4, औदारिक 1
3	वेद	सब
17	कषाय	अनन्तानुबन्धी 4, अप्रत्याख्यान 4 बिना
3	ज्ञान	सुज्ञान 3
1	संयम	संयमासंयम
3	दर्शन	चक्षु, अचक्षु, अवधि
3	लेश्या	पीत, पद्म, शुक्ल
1	भव्य	भव्य
3	सम्यक्त्व	उपशम,क्षयोपशम, क्षायिक[1]
1	संज्ञी	संज्ञी
1	आहारक	आहारक
1	गुणस्थान	देशव्रत
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
6	उपयोग	ज्ञान 3, दर्शन 3
11	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4, धर्म्य 3
37	आस्त्रव	योग 9, अविरति 11, कषाय 17
18 लाख	जाति	तिर्यञ्च 4, मनुष्य 14
57.5 लाख कोटि	कुल	तिर्यञ्च 43.5, मनुष्य 14

1. पञ्चम गुणस्थान में क्षायिक सम्यक्त्व मात्र मनुष्य में होता है, तिर्यञ्चों में नहीं।

1	गति	मनुष्य
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
11	योग	मन 4, वचन 4, औदारिक 1, आहा. 2
3	वेद	भाव वेद 3, द्रव्य से पुरुष
13	कषाय	संज्वलन 4, हास्यादि 9
4	ज्ञान	मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय
3	संयम	सामायिक, छेदो., परिहारविशुद्धि
3	दर्शन	चक्षु, अचक्षु, अवधि
3	लेश्या	पीत, पद्म, शुक्ल
1	भव्य	भव्य
3	सम्यक्त्व	उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक
1	संज्ञी	संज्ञी
1	आहारक	आहारक
1	गुणस्थान	प्रमत्तविरत
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
7	उपयोग	ज्ञान 4, दर्शन 3
7	ध्यान	आर्त 3, धर्म्य 4
24	आस्रव	योग 11 , कषाय 13
14 लाख	जाति	मनुष्य
14 लाख कोटि	कुल	मनुष्य

1	गति	मनुष्य
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
9	योग	मन 4, वचन 4, औदारिक 1
3	वेद	भाव वेद 3, द्रव्य से पुरुष
13	कषाय	संज्वलन 4, हास्यादि 9
4	ज्ञान	मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय
3	संयम	सामायिक,छेदो., परिहारविशुद्धि
3	दर्शन	चक्षु, अचक्षु, अवधि
3	लेश्या	पीत, पद्म, शुक्ल
1	भव्य	भव्य
3	सम्यक्त्व	उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक
1	संज्ञी	संज्ञी
1	आहारक	आहारक
1	गुणस्थान	अप्रमत्त विरत
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
3	संज्ञा	भय, मैथुन, परिग्रह
7	उपयोग	ज्ञान 4, दर्शन 3
4	ध्यान	धर्म्य 4
22	आस्रव	योग 9, कषाय 13
14 लाख	जाति	मनुष्य
14 लाख कोटि	कुल	मनुष्य

1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
9	योग	मन 4, वचन 4, औदारिक 1
3	वेद	भाव वेद 3, द्रव्य से पुरुष
13	कषाय	संज्वलन 4, हास्यादि 9
4	ज्ञान	मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय
2	संयम	सामायिक, छेदोपस्थापना
3	दर्शन	चक्षु, अचक्षु, अवधि
1	लेश्या	शुक्ल
1	भव्य	भव्य
2	सम्यक्त्व	द्वितीयोपशम, क्षायिक
1	संज्ञी	संज्ञी
1	आहारक	आहारक
1	गुणस्थान	अपूर्वकरण
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
3	संज्ञा	आहार बिना
7	उपयोग	ज्ञान 4, दर्शन 3
1	ध्यान	पृथक्त्ववितर्क वीचार
22	आस्रव	योग 9, कषाय 13
14 लाख	जाति	मनुष्य
14 लाख कोटि	कुल	मनुष्य

1	गति	मनुष्य
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
9	योग	मन 4, वचन 4, औदारिक 1
3	वेद	भाव वेद 3, द्रव्य से पुरुष
7	कषाय	संज्वलन 4, वेद 3
4	ज्ञान	मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय
2	संयम	सामायिक, छेदोपस्थापना
3	दर्शन	चक्षु, अचक्षु, अवधि
1	लेश्या	शुक्ल
1	भव्य	भव्य
2	सम्यक्त्व	द्वितीयोपशम, क्षायिक
1	संज्ञी	संज्ञी
1	आहारक	आहारक
1	गुणस्थान	अनिवृत्तिकरण
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
2	संज्ञा	मैथुन, परिग्रह
7	उपयोग	ज्ञान 4, दर्शन 3
1	ध्यान	पृथक्त्ववितर्क वीचार
16	आस्रव	योग 9, कषाय 7
14 लाख	जाति	मनुष्य
14 लाख कोटि	कुल	मनुष्य

1	गति	मनुष्य
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
9	योग	मन 4, वचन 4, औदारिक 1
0	वेद	भाववेद 0, द्रव्य से पुरुष
1	कषाय	संज्वलन सूक्ष्म लोभ
4	ज्ञान	मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय
1	संयम	सूक्ष्मसाम्पराय
3	दर्शन	चक्षु, अचक्षु, अवधि
1	लेश्या	शुक्ल
1	भव्य	भव्य
2	सम्यक्त्व	द्वितीयोपशम, क्षायिक
1	संज्ञी	संज्ञी
1	आहारक	आहारक
1	गुणस्थान	सूक्ष्मसाम्पराय
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
1	संज्ञा	परिग्रह (सूक्ष्मलोभ)
7	उपयोग	ज्ञान 4, दर्शन 3
1	ध्यान	पृथक्त्ववितर्क वीचार
10	आस्रव	योग 9, कषाय 1
14 लाख	जाति	मनुष्य
14 लाख कोटि	कुल	मनुष्य

1	गति	मनुष्य
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
9	योग	मन 4, वचन 4, औदारिक 1
0	वेद	भाववेद 0, द्रव्य से पुरुष
0	कषाय	0
4	ज्ञान	मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय
1	संयम	यथाख्यात
3	दर्शन	चक्षु, अचक्षु, अवधि
1	लेश्या	शुक्ल
1	भव्य	भव्य
2	सम्यक्त्व	द्वितीयोपशम, क्षायिक
1	संज्ञी	संज्ञी
1	आहारक	आहारक
1	गुणस्थान	उपशांत मोह
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
0	संज्ञा	0
7	उपयोग	ज्ञान 4, दर्शन 3
1	ध्यान	पृथक्त्ववितर्क वीचार
9	आस्रव	योग 9
14 लाख	जाति	मनुष्य
14 लाख कोटि	कुल	मनुष्य

1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
9	योग	मन 4, वचन 4, औदारिक 1
0	वेद	भाववेद 0, द्रव्य से पुरुष
0	कषाय	0
4	ज्ञान	मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय
1	संयम	यथाख्यात
3	दर्शन	चक्षु, अचक्षु, अवधि
1	लेश्या	शुक्ल
1	भव्य	भव्य
1	सम्यक्त्व	क्षायिक
1	संज्ञी	संज्ञी
1	आहारक	आहारक
1	गुणस्थान	क्षीणमोह
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
0	संज्ञा	0
7	उपयोग	ज्ञान 4, दर्शन 3
1	ध्यान	एकत्ववितर्क अवीचार
9	आस्त्रव	योग 9
14 लाख	जाति	मनुष्य
14 लाख कोटि	कुल	मनुष्य

1	काय	त्रस
7	योग	सत्य मन वचन 2, अनु. 2, औदा.2, का.1[1]
0	वेद	भाववेद 0, द्रव्य से पुरुष
0	कषाय /1 ज्ञान	0/ केवलज्ञान
1	संयम	यथाख्यात
1	दर्शन	केवलदर्शन
1	लेश्या	शुक्ल
1	भव्य	भव्य
1	सम्यक्त्व	क्षायिक
0	संज्ञी	संज्ञी असंज्ञी से रहित[2]
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
1	गुणस्थान	सयोग केवली
1	जीवसमास	पञ्चेन्द्रिय[3]
6	पर्याप्ति	सब
4	प्राण	वचन, काय, श्वास., आयु[4]
0	संज्ञा/2 उपयोग	0/केवलज्ञान, केवलदर्शन
1	ध्यान	सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाति
7	आस्रव	योग 7
14 लाख	जाति	मनुष्य
14 लाख कोटि	कुल	मनुष्य

1. सयोग केवली में भावमनोयोग नहीं होता है। किन्तु द्रव्यमनोयोग रहता है। अत: यहाँ दो मनोयोग लिए हैं। सयोग केवली जब समुद्घात करते हैं तब कार्मण काययोग एवं औदारिकमिश्र काययोग होता है। दण्ड समुद्घात में औदारिक काययोग, कपाट समुद्घात में औदारिकमिश्र काययोग, प्रतर समुद्घात एवं लोकपूरण समुद्घात में कार्मण काययोग रहता है। 2. केवली भगवान संज्ञी असंज्ञी से रहित हैं, क्योंकि ज्ञानावरण, दर्शनावरण कर्म से रहित होने के कारण केवली के मन के अवलम्बन से बाह्य अर्थ का ग्रहण नहीं होता है। अत: केवली को संज्ञी नहीं कह सकते, उन्हें असंज्ञी भी नहीं कह सकते हैं, क्योंकि जिन्होंने समस्त पदार्थ को साक्षात् कर लिया है, उन्हें असंज्ञी भी नहीं कह सकते हैं। 3. सयोग केवली, अयोग केवली में भावेन्द्रियाँ नहीं है तो जीवसमास क्यों लेते हैं। पञ्चेन्द्रिय जाति नामकर्म की अपेक्षा पञ्चेन्द्रिय जीवसमास ग्रहण की गई है। 4. सयोग केवली में चार प्राण लिए हैं, क्योंकि क्षयोपशमात्मक भावेन्द्रिय का अभाव होने से इन्द्रिय प्राण नहीं है एवं भावमन का अभाव होने से मन प्राण भी नहीं है।

विशेष- औदारिकमिश्र काययोग एवं कार्मण काययोग में केवली के दो प्राण (कायबल और आयु) होते हैं। अथवा समुद्घात केवली के वचनबल और श्वासोच्छ्वास प्राणों की कारणभूत वचन और श्वासोच्छ्वास पर्याप्तियाँ पायी जाती हैं, इसलिए छठवें समय में वचनबल और श्वासोच्छ्वास प्राण का सद्भाव हो जाता है, इसलिए औदारिकमिश्र काययोग में 4 प्राण भी होते हैं। (श्री धवला पु. 2/1/659-60)

सयोगकेवली के चार प्राणों में से वचन योग के विश्रान्त हो जाने पर 3 प्राण रहते हैं। तथा श्वासोच्छ्वास के विश्रान्त होने पर 2 प्राण रहते हैं। (जीवकाण्ड, 701)

	गति	मनुष्य
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
0	योग	0
0	वेद	भाव से 0 , द्रव्य से पुरुष
0	कषाय	0
1	ज्ञान	केवलज्ञान
1	संयम	यथाख्यात
1	दर्शन	केवलदर्शन
0	लेश्या	0
1	भव्य	भव्य
1	सम्यक्त्व	क्षायिक
0	संज्ञी	0
1	आहारक	अनाहारक
1	गुणस्थान	अयोग केवली
1	जीवसमास	पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
1	प्राण	आयु
0	संज्ञा	0
2	उपयोग	केवलज्ञान, केवलदर्शन
1	ध्यान	व्युपरतक्रिया निवृत्ति
0	आस्रव	0
14 लाख	जाति	मनुष्य सम्बन्धी
14 लाख कोटि	कुल	मनुष्य सम्बन्धी

1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
11	योग	मन 4, वचन 4, वैक्रियिक 2, कार्मण 1
1	वेद	नपुंसक
23	कषाय	स्त्री, पुरुष वेद बिना
6	ज्ञान	कुज्ञान 3, सुज्ञान 3
1	संयम	असंयम
3	दर्शन	केवलदर्शन बिना
3	लेश्या	कृष्ण, नील, कापोत[1]
2	भव्य	भव्य दोनों
6	सम्यक्त्व	सब[2]
1	संज्ञी	संज्ञी
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
4	गुणस्थान	1से 4 पर्यन्त[3]
1	जीवसमास	पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
9	उपयोग	ज्ञान 6, दर्शन 3
9	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4, धर्म्य 1[4]
51	आस्रव	आहा.2, स्त्री1, पुरुष1, औदा.2 बिना
4 लाख	जाति	नरक सम्बन्धी
25 लाख कोटि	कुल	नरक सम्बन्धी

1. कौन से नरक में कौन सी लेश्या रहती है-प्रथम, द्वितीय नरक में कापोत लेश्या। तृतीय नरक में कापोत एवं नील लेश्या। चतुर्थ नरक में नील लेश्या। पञ्चम नरक में नील एवं कृष्ण लेश्या। छठवे नरक में कृष्ण लेश्या एवं सप्तम नरक में परम कृष्ण लेश्या रहती है।
2. नरकगति में क्षायिक सम्यक्त्व कैसे ? क्षायिक सम्यक्त्व कर्मभूमि का मनुष्य केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में प्राप्त करता है। यदि उसने पूर्व में नरक आयु का बन्ध कर लिया है, तो वह आयु बदलती नहीं है वहाँ जाना ही पड़ेगा, किन्तु वह प्रथम नरक से आगे नहीं जाता है।
3. सासादन गुणस्थान वाला मरण कर नरकगति में नहीं जाता है। अतः यह गुणस्थान नरकगति में पर्याप्त अवस्था में ही बनेगा। तीसरा तो पर्याप्त अवस्था में ही होता है।
4. चतुर्थ गुणस्थान में धर्म्यध्यान दो होते हैं, किन्तु नरकगति में चतुर्थ गुणस्थान होते हुए भी अपाय विचय धर्म्यध्यान नहीं क्योंकि नारकी दूसरों के दुःख दूर हो ऐसे भाव कर ही नहीं सकता है।

1	गति	तिर्यञ्च
5	इन्द्रिय	सब
6	काय	सब
11	योग	मन 4,वचन 4,औदारिक 2, कार्मण 1
3	वेद	सब
25	कषाय	सब
6	ज्ञान	कुज्ञान 3, सुज्ञान 3
2	संयम	असंयम, देशसंयम
3	दर्शन	केवल दर्शन बिना
6	लेश्या	सब
2	भव्य	भव्य, अभव्य
6	सम्यक्त्व	सब[1]
2	संज्ञी	संज्ञी, असंज्ञी
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
5	गुणस्थान	1 से 5 पर्यन्त
19	जीवसमास	सब
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
9	उपयोग	कुज्ञान 3, सुज्ञान 3, दर्शन 3
11	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4, धर्म्य 3
53	आस्त्रव	11 योग, 5 मिथ्या., 12 अवि., 25 कषाय
62 लाख	जाति	एकेन्द्रिय से तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त
134.5 लाख कोटि	कुल	एकेन्द्रिय से तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त

- **तिर्यञ्चगति में क्षायिक सम्यक्त्व कैसे ?**
  क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने वाला कर्मभूमि का ही मनुष्य होता है। उसने पहले तिर्यञ्च आयु का बन्ध कर लिया तो वह तिर्यञ्च होगा, किन्तु भोगभूमि में ही होगा। कर्मभूमि में नहीं।

1	गति	तिर्यञ्च
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
11	योग	मन 4,वचन 4,औदारिक 2, कार्मण 1
2	वेद	स्त्री, पुरुष
24	कषाय	नपुंसक वेद बिना
6	ज्ञान	सुज्ञान 3, कुज्ञान 3
1	संयम	असंयम
3	दर्शन	केवल दर्शन बिना
6	लेश्या	अपर्याप्त में अशुभ 3, पर्याप्त में शुभ 3
2	भव्य	भव्य, अभव्य
6	सम्यक्त्व	सब
1	संज्ञी	संज्ञी
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
4	गुणस्थान	1 से 4 तक
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
9	उपयोग	ज्ञान 6, दर्शन 3
10	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4, धर्म्य 2
52	आस्त्रव	5 मि., 11 योग, 12 अवि., 24 कषाय
4 लाख	जाति	तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी[2]
31 लाख कोटि	कुल	तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी थलचर 19 लाख कोटि नभचर 12 लाख कोटि

1. भोगभूमि के तिर्यञ्चों में दो वेद स्त्री-पुरुष गुणस्थान 1 से 4 तक होते हैं। पर्याप्त अवस्था में तीन शुभ लेश्याएँ एवं अपर्याप्त अवस्था में तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं।
2. भोगभूमि में विकलत्रय एवं जलचर जीव नहीं होते हैं। अतः वहाँ कुल थलचर की 19 लाख कोटि एवं नभचर की 12 लाख कोटि रहेगी।

1	गति	तिर्यञ्च
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
11	योग	मन 4, वचन 4, औदारिक 2, कार्मण 1
3	वेद	सब
25	कषाय	सब
6	ज्ञान	सुज्ञान 3, कुज्ञान 3
2	संयम	असंयम, देशसंयम
3	दर्शन	केवल दर्शन बिना
6	लेश्या	सब
2	भव्य	भव्य, अभव्य
5	सम्यक्त्व	क्षायिक बिना
1	संज्ञी	संज्ञी
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
5	गुणस्थान	1से 5 तक
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
9	उपयोग	ज्ञान 6, दर्शन 3
11	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4, धर्म्य 3
53	आस्त्रव	5 मि., 11 योग, 12 अविरति, 25 कषाय
4 लाख	जाति	तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी
43.5 लाख कोटि	कुल	तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी

1	गति	मनुष्य
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
13	योग	वैक्रियिक द्विक बिना
3	वेद	सब
25	कषाय	सब
8	ज्ञान	सब
7	संयम	सब
4	दर्शन	सब
6	लेश्या	सब
2	भव्य	भव्य, अभव्य
6	सम्यक्त्व	सब
1	संज्ञी	संज्ञी
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
14	गुणस्थान	सब
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
12	उपयोग	सब
16	ध्यान	सब
55	आस्त्रव	5 मि., 13 योग, 12 अविरति, 25 कषाय
14 लाख	जाति	मनुष्य सम्बन्धी
14 लाख कोटि	कुल	मनुष्य सम्बन्धी

1	गति	मनुष्य
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
11	योग	मन 4, वचन 4, औदा. 2 कार्मण 1
2	वेद	स्त्री, पुरुष
24	कषाय	नपुंसक के बिना
6	ज्ञान	3 कुज्ञान, 3 सुज्ञान
1	संयम	असंयम
3	दर्शन	चक्षु, अचक्षु, अवधि
6	लेश्या	अपर्याप्त में 3 अशुभ, पर्याप्त में 3 शुभ
2	भव्य	भव्य, अभव्य
6	सम्यक्त्व	सब
1	संज्ञी	संज्ञी
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
4	गुणस्थान	1-4
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
9	उपयोग	ज्ञान 6, दर्शन 3
10	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4, धर्म्य 2
52	आस्त्रव	5 मि., 11 योग, 12 अविरति, 24 कषाय
14 लाख	जाति	मनुष्य सम्बन्धी
14 लाख कोटि	कुल	मनुष्य सम्बन्धी

1. भोगभूमि के तिर्यञ्चों के समान ही भोगभूमि के मनुष्यों में भी क्षायिक सम्यग्दर्शन, दो वेद, गुणस्थान 1-4 तक पर्याप्त अवस्था में तीन शुभ लेश्याएँ एवं अपर्याप्त अवस्था में तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं।

1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
11	योग	मन 4, वचन 4 , वैक्रियिक 2, कार्मण 1
2	वेद	स्त्री वेद, पुरुष वेद
24	कषाय	नपुंसक वेद बिना
6	ज्ञान	कुज्ञान 3, सुज्ञान 3
1	संयम	असंयम
3	दर्शन	केवल दर्शन बिना
6	लेश्या	पर्याप्त 3 अपर्याप्त 6[1]
2	भव्य	भव्य, अभव्य
6	सम्यक्त्व	सब[2]
1	संज्ञी	संज्ञी
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
4	गुणस्थान	1 से 4 पर्यन्त
1	जीवसमास	संज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
9	उपयोग	ज्ञान 6, दर्शन 3
10	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4, धर्म्य 2
52	आस्त्रव	औदा.2, आहा.2, नपुंसक वेद 1 बिना
4 लाख	जाति	देव सम्बन्धी
26 लाख कोटि	कुल	देव सम्बन्धी

1. देवगति में अपर्याप्त अवस्था में छः लेश्याएँ एवं पर्याप्त अवस्था में तीन शुभ लेश्याएँ होती हैं। भवनत्रिक में पर्याप्त अवस्था में एक पीत लेश्या एवं अपर्याप्त अवस्था में तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं एवं स्वर्गों में क्रमशः पीत, पद्म एवं शुक्ल लेश्या रहती है। पर्याप्त एवं अपर्याप्त दोनों अवस्थाओं में एक सी रहती है। 1, 2 स्वर्ग में पीत 3,4 स्वर्ग में पीत और पद्म 5 से 8 स्वर्ग तक पद्म लेश्या 9 से 12 में स्वर्ग तक पद्म एवं शुक्ल लेश्या 13 वें से 16 वें स्वर्ग एवं नवग्रैवेयक में शुक्ल लेश्या अनुदिश एवं अनुत्तर में परम शुक्ललेश्या रहती है।
2. देवगति में सभी अर्थात् 6 सम्यक्त्व होते हैं। भवनत्रिक में क्षायिक सम्यक्त्व के बिना 5 रहते हैं। प्रथम स्वर्ग से नवग्रैवेयक तक 6 रहते हैं। नव अनुदिश एवं पाँच अनुत्तरों में अपर्याप्त अवस्था में तीन द्वितीयोपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। पर्याप्त अवस्था में क्षयोपशम और क्षायिक सम्यक्त्व होते हैं।

एकेन्द्रिय

1	गति	तिर्यञ्च
1	इन्द्रिय	एक इन्द्रिय
5	काय	त्रस बिना
3	योग	औदारिक 2, कार्मण 1
1	वेद	नपुंसक वेद
23	कषाय	स्त्री -पुरुष वेद बिना
2	ज्ञान	कुमति, कुश्रुत
1	संयम	असंयम
1	दर्शन	अचक्षु दर्शन
3	लेश्या	कृष्ण, नील, कापोत
2	भव्य	भव्य, अभव्य
1	सम्यक्त्व	मिथ्यात्व
1	संज्ञी	असंज्ञी
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
1	गुणस्थान	मिथ्यात्व[1]
14	जीवसमास	एकेन्द्रिय सम्बन्धी
4	पर्याप्ति	भाषा और मन बिना
4	प्राण	स्पर्शन, कायबल, आयु, श्वासोच्छ्वास
4	संज्ञा	सब
3	उपयोग	कुमति-कुश्रुत ज्ञान, अचक्षु दर्शन
8	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4,
38	आस्त्रव	मि.5, योग 3, अवि.7[2], कषाय 23
52 लाख	जाति	एकेन्द्रिय सम्बन्धी
67 लाख कोटि	कुल	एकेन्द्रिय सम्बन्धी

1. एक इन्द्रिय से असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक गुणस्थान प्रथम होता है। यतिवृषभ आचार्य के मतानुसार एकेन्द्रिय से असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक अपर्याप्त अवस्था में दूसरा गुणस्थान भी होता है, किन्तु यहाँ यह कथन नहीं है।
2. एकेन्द्रिय में अविरति सात होती हैं। एक इन्द्रिय को वश में नहीं करना एवं षट्काय की रक्षा नहीं करना। क्या एक इन्द्रिय भी त्रस का घात करते हैं ? अफ्रीका के वनों में एक लोम नामक पेड़ अपने निकट से गुजरने वाले जन्तुओं को पकड़कर अपना आहार बना लेता है।

दो इन्द्रिय

1	गति	तिर्यञ्च
1	इन्द्रिय	दो इन्द्रिय
1	काय	त्रस
4	योग	अनुभय वचन[1], औदारिक 2, कार्मण 1
1	वेद	नपुंसक वेद
23	कषाय	स्त्री -पुरुष वेद बिना
2	ज्ञान	कुमति, कुश्रुत
1	संयम	असंयम
1	दर्शन	अचक्षु दर्शन
3	लेश्या	कृष्ण, नील, कापोत
2	भव्य	भव्य, अभव्य
1	सम्यक्त्व	मिथ्यात्व
1	संज्ञी	असंज्ञी
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
1	गुणस्थान	मिथ्यात्व
1	जीवसमास	दो इन्द्रिय सम्बन्धी
5	पर्याप्ति	मन बिना
6	प्राण	स्पर्शन, रसना, कायबल, वचनबल, आयु, श्वासोच्छ्वास
4	संज्ञा	सब
3	उपयोग	कुमति-कुश्रुत ज्ञान, अचक्षु दर्शन
8	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4
40	आस्त्रव	मि. 5, योग 4, अवि.8, कषाय 23
2 लाख	जाति	दो इन्द्रिय सम्बन्धी
7 लाख कोटि	कुल	दो इन्द्रिय सम्बन्धी

1. दो इन्द्रिय से असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय तक मात्र अनुभय वचनयोग रहता है।

1	गति	तिर्यञ्च
1	इन्द्रिय	तीन इन्द्रिय
1	काय	त्रस
4	योग	अनुभय वचन, औदारिक 2, कार्मण 1
1	वेद	नपुंसक वेद
23	कषाय	स्त्री-पुरुष वेद बिना
2	ज्ञान	कुमति, कुश्रुत
1	संयम	असंयम
1	दर्शन	अचक्षु दर्शन
3	लेश्या	कृष्ण, नील, कापोत
2	भव्य	भव्य, अभव्य
1	सम्यक्त्व	मिथ्यात्व
1	संज्ञी	असंज्ञी
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
1	गुणस्थान	मिथ्यात्व
1	जीवसमास	तीन इन्द्रिय सम्बन्धी
5	पर्याप्ति	मन बिना
7	प्राण	स्पर्शन,रसना, घ्राण इन्द्रिय, कायबल, वचनबल, आयु, श्वासोच्छ्वास
4	संज्ञा	सब
3	उपयोग	कुमति-कुश्रुतज्ञान, अचक्षु दर्शन
8	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4
41	आस्रव	मि.5, योग 4, अवि.9, कषाय 23
2 लाख	जाति	तीन इन्द्रिय सम्बन्धी
8 लाख कोटि	कुल	तीन इन्द्रिय सम्बन्धी

1	गति	तिर्यञ्च
1	इन्द्रिय	चार इन्द्रिय
1	काय	त्रस
4	योग	अनुभय वचन, औदारिक 2, कार्मण 1
1	वेद	नपुंसक वेद
23	कषाय	स्त्री-पुरुष वेद बिना
2	ज्ञान	कुमति, कुश्रुत
1	संयम	असंयम
2	दर्शन	चक्षु-अचक्षु दर्शन
3	लेश्या	कृष्ण, नील, कापोत
2	भव्य	भव्य, अभव्य
1	सम्यक्त्व	मिथ्यात्व
1	संज्ञी	असंज्ञी
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
1	गुणस्थान	मिथ्यात्व
1	जीवसमास	चार इन्द्रिय सम्बन्धी
5	पर्याप्ति	मन बिना
8	प्राण	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कायबल, वचनबल, आयु, श्वासोच्छ्वास
4	संज्ञा	सब
4	उपयोग	कुमति-कुश्रुतज्ञान, चक्षु-अचक्षु दर्शन
8	ध्यान	आर्त 4, रौद्र 4
42	आस्रव	मि. 5, योग 4, अवि.10, कषाय 23
2 लाख	जाति	चार इन्द्रिय सम्बन्धी
9 लाख कोटि	कुल	चार इन्द्रिय सम्बन्धी

पञ्चेन्द्रिय

4	गति	सब
1	इन्द्रिय	पञ्चेन्द्रिय
1	काय	त्रस
15	योग	सब
3	वेद	सब
25	कषाय	सब
8	ज्ञान	सब
7	संयम	सब
4	दर्शन	सब
6	लेश्या	सब
2	भव्य	भव्य, अभव्य
6	सम्यक्त्व	सब
2	संज्ञी	संज्ञी, असंज्ञी
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
14	गुणस्थान	सब
2	जीवसमास	संज्ञी-असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
12	उपयोग	सब
16	ध्यान	सब
57	आस्रव	सब
26 लाख	जाति	पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी
108.5 लाख कोटि	कुल	पञ्चेन्द्रिय सम्बन्धी

त्रसकाय

4	गति	सब
4	इन्द्रिय	एकेन्द्रिय जाति बिना
1	काय	त्रस
15	योग	सब
3	वेद	सब
25	कषाय	सब
8	ज्ञान	सब
7	संयम	सब
4	दर्शन	सब
6	लेश्या	सब
2	भव्य	भव्य, अभव्य
6	सम्यक्त्व	सब
2	संज्ञी	संज्ञी, असंज्ञी
2	आहारक	आहारक, अनाहारक
14	गुणस्थान	सब
5	जीवसमास	एकेन्द्रिय बिना
6	पर्याप्ति	सब
10	प्राण	सब
4	संज्ञा	सब
12	उपयोग	सब
16	ध्यान	सब
57	आस्रव	सब
32 लाख	जाति	एकेन्द्रिय बिना
132.5 लाख कोटि	कुल	एकेन्द्रिय बिना